सीधा संवाद

संत रैदास का काव्य
वर्ण व जाति के प्रश्न

प्रो. महेंद्र सिंह बेनीवाल

जन्मः
1 अक्तूबर 1967

शिक्षाः
एम.ए. एम.फिल. (प्रथम श्रेणी)
पीएच.डी, दिल्ली विश्वविद्यालय

संप्रति : प्रोफेसर हिंदी विभाग,
राजधानी कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय

विशेष :
पूर्व अध्यक्ष, दलित लेखक संघ

सम्मान
ओम प्रकाश वाल्मीकि साहित्य सम्मान,
बाबा साहब डॉ. आंबेडकर राष्ट्रीय भूषण सम्मान

कृतिः
काव्य संग्रह कब तक मारे जाओगे

संपादन सहयोग
'कल के लिए' दलित साहित्य
18 शोध पत्र प्रकाशित

भारतीय समाज भारत में आदिम युग से रहने वाली और समय-समय पर बाहर से आनेवाली विदेशी जातियों के परस्पर संघर्ष, विरोध और सहयोग से निर्मित हुआ है। बाहर से आने वाली नस्लों के साथ यहां के लोगों के काफी लंबे संघर्ष चले, जिसके कारण विजेता और विजित, श्रेष्ठ और निकृष्ट की व्यवस्था प्रारंभ हुई। पराजित, विजित जातियों के प्रति निकृष्टता, घृणा का भाव विजेताओं के मन में बना और यह भाव आज तक बना हुआ है जिससे लगता है, वे संघर्ष आज भी जारी हैं। देखा गया है कि समाज में बहने वाले ये विचार लिपिबद्ध होकर बाद में ग्रंथों में समा गये।

भारतीय समाज-व्यवस्था में वर्ण और जाति

भारत में बाहर से आनेवाली जिन जातियों का नाम लिया जाता है उनमें आर्य, ईरानी, युनानी, पाथियन, वेक्ट्रियन, सिदियन, हूण, शक, कुषाण, तुर्क, ईसाई, यहूदी और पारसी इत्यादि के नाम मुख्य हैं। ऐसा माना जाता है कि भारतीय समाज व्यवस्था के निर्माण में आर्यो की भूमिका निर्णायक रही। कहा जाता है आर्यो ने अनार्यों को पराजित कर अपना दास बना लिया। यहां समाज स्पष्ट रूप से दो भागों में विभाजित हो गया। दासों को ही आगे चलकर शूद्र कहा गया। जिनका उल्लेख वैदिक, ब्राह्मण, उपनिषद, स्मृति, महाकाव्य और पुराण आदि ग्रंथों में मिलता है। भारत का समाज चार वर्णो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में विभाजित हो गया जिसे 'वर्णव्यवस्था' के नाम से जाना गया। आगे चलकर यही 'वर्ण व्यवस्था' जन्म के साथ नाभिनाल होकर 'जाति व्यवस्था' में तब्दील हो गई।

वर्णव्यवस्था की उत्पत्ति को कुछ लोग 'आवश्यक श्रम विभाजन' तो कुछ लोग इसे 'शोषक वर्ग के षड्यंत्र' के रूप में देखते हैं। कुछ इसे जन्म के आधार पर तो कुछ कर्म के आधार पर इसकी उत्पत्ति मानते हैं। वर्णव्यवस्था का प्रथम उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। लेकिन इस उल्लेख को

डॉ. आंबेडकर, रामशरण शर्मा एवं पी. वी.काणे प्रक्षिप्त मानते हैं। काणे का मानना है- "ऋग्वेद में पुरुषसूक्त को छोड़कर कहीं भी वैश्य एवं शूद्र शब्द नहीं आये हैं।"[1]

उत्तर वैदिक काल में अन्य तीन वेदों की रचना हुई। यजुर्वेद,अथर्ववेद, सामवेद ब्राह्मण, धर्मसूत्र, स्मृति आदि की रचना हुई। वर्णव्यवस्था को इसी युग में परिपक्वता मिली। मनुष्य के ही नहीं देवताओं और ऋतुओं के भी वर्ण निश्चित किए गये। आगे चलकर शूद्रों को भी बहिष्कृत एवं अबहिष्कृत शूद्र में बांटा गया। इन्हें ही ज्योतिबा फूले ने शूद्र-अतिशूद्र कहा। शूद्रों के खिलाफ घृणा का प्रचार लगातार होता रहा। प्राचीन महाकाव्यों में भी इसके उल्लेख मिलते हैं। शूद्रों को राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया। जाति के आधार पर भी उन्हें हर तरह से वंचित रखा गया। डॉ. तेजसिंह का कहना है—"जाति का केवल सामाजिक आधार ही नहीं है उसका आर्थिक आधार भी है जो पूरी सामाजिक संस्था में व्याप्त है।"[2] शुंग, कण्व, सातवाहन, गुप्त वंश में शूद्रों की स्थिति पीड़ादायी ही रही।

इस्लाम का आगमन और जातिव्यवस्था

इस्लाम समानतावादी धर्म था जिसमें जाति भेद, वर्णभेद, खानपान और अन्तर्जातीय विवाह पर प्रतिबंध नहीं था। इस्लाम से पहले जो आक्रमणकारी आये उन्होंने भारत के धर्म को स्वीकार कर लिया लेकिन मुसलमानों के पास मजबूत धर्म संस्कृति थी इसलिए इसे हिन्दू धर्म पचा नहीं पाया। डॉ. नर्मदेश्वर प्रसाद का मानना है "हिंदू समाज ने शकों, हुणों और कुषाणों को पचा लिया, किन्तु मुसलमानों को नहीं पचा सका।"[3] लेकिन इस्लाम भी भारत में अपने वास्तविक रूप में नहीं रह सका उसमें अछूतपन तो नहीं, लेकिन जाति व्यवस्था ने अपनी जड़ बना ली। मुसलमानों के कारण भी जातियों की संख्या बढ़ी कुछ अछूत जातियां भी इस काल में निर्मित हुई।

जाति व्यवस्था शासकों के लिए हमेशा मददगार रही है इसलिए इसे उन्होंने नहीं छेड़ा। तुर्क, अफगानों के कुछ हस्तक्षेप से नगर में बसने का और सेना में भर्ती होने का अधिकार शूद्र और अन्त्यजों को मिला। फिर भी बौद्ध धर्म के बाद इस्लाम दूसरा धर्म था जिसने अपने समानतावादी सिद्धांत के कारण दलित-पिछड़ी जातियों को आकर्षित किया।

भक्ति आंदोलन की उत्पत्ति और शूद्र-अतिशूद्र

भक्ति उत्पन्न तो दक्षिण में हुई लेकिन उत्तर भारत में इसने आंदोलन का रूप धारण किया। रामचन्द्र शुक्ल ने इसे हिंदुओं की 'पराजित मनोवृत्ति' से जोड़ा तो हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे भारतीय चिंतनधारा का स्वाभाविक विकास कहा। विश्वनाथ त्रिपाठी ने इरफान हबीब के हवाले से बताया है— "नये शासकों की सत्ता स्थापित होने पर 13वीं और 14वीं शताब्दी में विलास सामग्री और सुविधाओं की मांग बढ़ी। केंद्रीय सत्ता स्थापित होने पर सड़कों भवनों का निर्माण तेजी से होने लगा। इस विलास सामग्री और सड़कों, भवनों आदि के निर्माण में तथाकथित नीची कही जाने वाली जातियों के लोग काम करते थे। इससे उनकी आर्थिक स्थिति बेहतर हुई। आर्थिक स्थिति बेहतर होने पर उनमें सामाजिक मर्यादा की भावना पैदा हुई। निर्गुण पंथ के उदय और उसमें तथाकथित नीची कही जाने वाली जातियों के संतों के इतनी अधिक संख्या में आने का कारण यही है।"[4]

इन निर्गुण संतों ने जाति-पांति, रूढ़ि, आडंबर, पाखण्डों पर जमकर प्रहार किये। ब्राह्मणवाद का पूरी तरह खंडन किया। कबीर ने स्वयं को जुलाहा और रैदास ने अपने को चमार कहकर जातिगत हीनता से मुक्त होने के संकेत दिये। कबीर ने—"ब्राह्मण गुरु जगत का साधु का गुरु नाही।"[5] कहकर ब्राह्मण वर्चस्व का खंडन किया।

संत कवि अधिकांश निम्न कही जाने वाली जातियों से आए थे। कबीर जुलाहा, रैदास चमार, दादूदयाल धुनिया, बुल्ला साहब कुनबी, दीन दरवेश लोहार, नामदेव छीपी, धन्ना जाट, इत्यादि जातियों से संबद्ध होने के कारण सभी ने जाति-पांति का खंडन किया है। इसलिए जाति का प्रश्न संत कवियों के यहां एक अहम प्रश्न बनकर आया है।

संत रैदास के काव्य में जाति और वर्ण का प्रश्न

संत काव्यधारा में रैदास का स्थान कबीर के बाद माना जाता है। उनका जन्म जिस अछूत जाति में हुआ उसको लेकर उनके मन में कोई हीनता नहीं है। झाली रानी और मीरा ने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया था। मीरा ने अपने पदों में रैदास का उल्लेख किया है– "पीहर जाऊं न सासरे, नहीं पिया के पास, मीरा सरणै राम कै, म्हाने गुरु मिलिया रैदास।"[6]

माधव हाड़ा लिखते हैं– "*रैदास के मीरा के गुरु होने की लोक की धारणा सर्वथा निराधार नहीं है, जैसा कि कुछ लोग मानते है। उत्तर भारत के लोक की स्मृति में जिस तरह रैदास और मीरा के गुरु शिष्य संबंध की कहानियां प्रचलित हैं, उससे यह तो तय है कि मीरा किसी न किसी तरह रैदास से परिचित जरूर रही होंगी।*"[7]

रैदास को कबीर का समकालीन माना जाता है। रैदास ने कबीर को 'गुरु समान बड़ भ्राता' कहकर सम्मान दिया है। रैदास के 40 पद सिक्खों के धर्मग्रंथ 'गुरु ग्रंथ साहब' में संकलित हैं। कबीर और रैदास का गुणगान भी काफी हो रहा था जिससे तुलसीदास दुःखी हुए थे। डॉ. शुकदेव सिंह ने लिखा है– "*कबीर रैदास इत्यादि का गुणगान देखकर तुलसीदास को कष्ट हुआ था*' और उन्होंने '*प्राकृत जन कीन्हें गुणगाना, सिर धुनि गिरा लागि पछिताना*' जैसी पंक्ति लिखी। ...यह कैसा विचित्र संयोग है जिन संतों ने किसी का चरित्र नहीं लिखा 'चरित्र' और 'अवतार' को माया का खेल कहा, उन संतों के चरित लिखे गये। उन्हें अवतार और देवत्व से संबद्ध किया गया, लेकिन जिस तुलसीदास ने राम का चरित्रलिखा उनका 'चरित्र' किसी ने नहीं लिखा। केवल भक्तमालों में वे वाल्मीकि के अनुवादक के रूप में स्मरण किए जाते हैं।"[8] तुलसीदास ने तो रैदास की पंक्तियों—

"रैदास बामन मत पूजिए,
जो होय गुणहीन।
पूजिए चरण चंडाल के
जो होय गुण प्रवीन।"[9] को उलटकर लिखा है। 'रामचरितमानस' में वे लिखते हैं–

"पूजिए विप्र ज्ञान गुण हीना
पूजिए न शूद्र ज्ञान प्रवीणा"[10]

'जाति' और 'वर्ण' का प्रश्न

संत रैदास के काव्य में 'वर्ण' एवं 'जाति' के सवाल को क्रमबद्ध तरीके से देखा जा सकता है। पहला प्रश्न तो यह है कि रैदास जाति हीनता की ग्रंथि से मुक्त हैं। उनका जन्म जिस 'चमार' जाति में हुआ, जो मृत पशुओं को ढोने का या जूता बनाने का काम करती रही है, उसके प्रति उनके भीतर एक स्वाभिमान है। रैदास का यह स्वाभिमान, आज चमार जाति के या अन्य दलित जातियों में 'आत्मविश्वास' भरने का काम कर रहा है। रैदास लिखते हैं—

"जाके कुटुंब के ढेढ़ सभ ढोर ढोवंत फिरहि अजहू बनारसी आस पासा। आदर सहित विप्र करहि डंडउति, तिन तनै रैदासानुदासा।"[11]

अर्थात जिसके परिवार के लोग बनारस के आस-पास आज भी मृत पशुओं को ढोने का काम करते हैं उस रैदास को आज ब्राह्मण भी दंडवत प्रणाम करते हैं। अपने कई पदों में वे '*कहे रैदास खलास चमारा*' की छाप भी लगाते हैं। रैदास का यह स्वाभिमान का भाव ही था जिसके कारण डॉ. आंबेडकर ने अपनी दो पुस्तकें 'Anhilation of caste' और 'Untouchable' संत रैदास को समर्पित की हैं।

वर्णों के विषय में रैदास के विचार

हिंदू समाज व्यवस्था 'वर्ण व्यवस्था' है। इसमें आगे चलकर जिस तरह जातियों का सोपानीकरण हुआ वर्णों में भी यही सीढ़ीनुमा व्यवस्था कायम है। 'ब्राह्मण' वर्ण सर्वोपरि और 'शूद्र' वर्ण निम्नतम। ऊपरी तीन वर्ण सत्ता संपत्ति और सम्मान से युक्त हैं चौथा इनसे वंचित। समाज जिसे ब्राह्मण कहता है, रैदास उसे ब्राह्मण न मानकर, चारों वर्णों को अपने तरीके से परिभाषित करते हैं।

ब्राह्मण वर्ण

"रैदास जोउ वेता ब्रह्मकर, सोइ ब्राह्मन जान।
ब्रह्म न जऊ जानहि, तउ न ब्राह्मण मान।।"[12]

वे ब्रह्म के न जानने वाले को ब्राह्मण नहीं मानते। इतना ही नहीं, जो धरम-करम को नहीं जानता, मन में जाति का अभिमान रखता है, ऐसे

ब्राह्मण से वे परिश्रम से अपनी आजीविका चलाने वाले श्रमिक या मजदूर को श्रेष्ठ मानते हैं।

क्षत्रिय वर्ण

रैदास सच्चा क्षत्रिय उसे मानते है जो दीन दुखियों की भलाई के लिए अपने प्राण न्यौछावर कर दे तथा कभी भी रण क्षेत्र को न छोड़े।

"दीन दुखी के हेत जउ,बारै अपने प्राण।
रैदास उह नर सूर कौ, सांचा क्षत्री जान।।" [13]

वैश्य वर्ण

रैदास वैश्य उसे मानते हैं, जो पूरी सच्चाई के साथ व्यापार करके पुन्य कमाई करता है और सभी के सुख की कामना करें। साथ ही वे यह भी कहते है कि जो सत्य के बाजार में, सत्य की तराजू से सच का सौदा देता है, वही सच्चा वैश्य है।

"सांची हाट बैठि कर, सौदा सांचा देइ। तकड़ी तौले सांच की, रैदास वैस है सोइ।"[14]

शूद्र वर्ण

जो शुद्ध और पवित्र जीवन जीते हैं, वे ही शूद्र हैं। जो ईश्वर जन की सेवा करें, मन में अहंकार न रखे, असत्य न बोले, वही शूद्र धन्य है।

"रैदास जउ अति पवित्त हैं, सोइ सूदर जान।
जउ कुकरमी असुध जन, तिन्ह ही न सूदर मान।"[14]

डॉ. सुभाष चन्द्र का मानना है— "रविदास ने अपने सामाजिक चिंतन में समाज में ऊंच-नीच की भावना का खंडन किया और वर्णाश्रम व्यवस्था का जमकर विरोध किया। उनके विचार में ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र और क्षत्रिय, डोम, चमार और मलेच्छ भगवत भजन से ही एक कुल के हो जातेहैं।" [16]

रैदास के वर्ण चिंतन में जन्म पर बल न होकर कर्म और आचरण पर ही अधिक बल है। सभी वर्णों को उन्होंने एक नये रूप में परिभाषित किया है।

रैदास काव्य में जाति का प्रश्न

वर्णों की संख्या तो सिर्फ चार मानी जाती है। कहीं-कहीं शास्त्रों में 'पंचम वर्ण'का उल्लेख मिलता है, लेकिन भारत में जातियों की संख्या छह हजार से ऊपर मानी गई है। जातियों का विशाल सागर भारत में मौजूद है। रैदास 'जाति व्यवस्था' को बड़ी बारीकी से समझते हैं। वे समाज पर महीन दृष्टि डालते हुए अनुभव करते है, यहां 'जाति के भीतर भी जाति' है, जिसमें इंसानों के बीच अलगाव पैदा किया है। इसके कारण समाज बिखरा हुआ है।

"जात-जात में जात है, ज्यों केलन के पात। रैदास न मानुष जुड़ सकै, जौं लौंजातनजात।"[17]

वे जाति व्यवस्था के नुकसान को देखते हैं। जाति के फेर में सारा समाज उलझकर रह गया। जाति को रैदास एक (मानसिक) रोग कहते हैं जो इंसानों के बीच से मनुष्यता को खा गया।

"जात-पात के फेर मंहि, उरझि रहइ सब लोग। मानुषण को खात हइ, रैदास जात का रोग।"[18]

चाहे 'जाति' हो या 'वर्ण', रैदास मनुष्य के जन्म को उसका आधार नहीं मानते हैं। वे साफ-साफ कहते हैं- "ब्राह्मण, खतरी, वैस, सूद रैदास जनम ते नाहि"[19] उसी प्रकार ऊंच-नीच का आधार भी वे जन्म को न मानकर मनुष्य के कर्मों से मानते हैं।

"रैदास जन्म के कारनै, होत न कोउ नीच। नर कूं नीच करि डारि है, ओछे कर्म की कीच"[20]

अगर कोई सुकर्म करता है तो नीच भी ऊंचा हो सकता है, लेकिन ऊंच भी यदि कुकर्म करता है तो वह महानीच कहलाता है -

"रैदास सुकरमन सौं नीच ऊँच हो जाय। करइ कुकरम जो ऊँच भी, तो महानीच कहलाय।।" [21]

ब्राह्मण या पंडित जहां वर्ण है वहीं वह जाति भी है। रैदास 'चमार' और 'ब्राह्मण' में कोई भेद नहीं मानते। उनका मानना है सभी एक हैं।

"वेद पढ़ई पंडित बन्यो, गांठ पन्ही तउ चमार। रैदास मानुष इक हइ, नाम धरै हइचार।"[22]

जाति के आधार पर 'ब्राह्मण' को 'देवता' माना जाना उसके चरण छूने, आशीर्वाद लेने को रैदास सही नहीं मानते हैं। वे गुणों और योग्यताओं के पक्षधर हैं न कि जाति के—

"रैदास ब्राह्मण मत पूजिए, जउ होऊ गुनहीन। पूजहि चरन चण्डाल के, जउहौवे गुन प्रवीन" [23]

मनुष्य की उत्पत्ति के लिहाज से, वे सभी मनुष्यों को एक मानते हैं।

सब एक ही बूंद से उत्पन्न हैं, सबका सिरजनहार एक ही है। एक ही जोति से सब उपजै है, सबका कर्ता एक है फिर ब्राह्मण और चाण्डाल का भेद कैसा? सब उसी प्रभु के 'पूत' हैं और वह प्रभु सबका पिता। फिर जात और कुजात क्या? रैदास का स्पष्ट मानना है किसी से जाति मत पूछिए क्योंकि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सभी के एक प्रभु से उत्पन्न होने के कारण सभी की जाति एक ही है।

जाति के आधार पर घृणा की जाती है। इस घृणा का स्रोत वे पराधीनता को मानते हैं, पराधीन व्यक्ति से कोई प्रीत नहीं करता है। इसलिए समाज में पराधीन जातियां ही सताई जाती हैं, उनसे ही घृणा की जाती है। पराधीन का कोई दीन या धर्म भी नहीं माना जाता है। अछूत जातियों के विषय में यह बात पूरी तरह सही है। उनकी हीनता या निम्नता का कारण उनकी पराधीनता ही है—

"पराधीन को दीन क्या, पराधीन बेदीन
रैदास दास पराधीन को, सब हिं समझै हीन" [24]

इस पराधीनता के कारण समाज में असमानता है, भूख है, दुःख है, निम्न जातियों का सामाजिक अपमान है, इसलिए वे ऐसा राज चाहते हैं–

"ऐसो चाहौं राज मैं, जहां मिलै सबन कौ अन्न। छोट बड़ो सभ सम बसै, रैदास रहै प्रसन्न।" [25]

रैदास 'बेगम पुरा'का विकल्प प्रस्तुत करते हैं। जो पूरन सुख धाम है, जहां सभी गमों से मुक्त हो बेग़म रह सकते हैं। जिस तरह तुलसी रामराज्य का विकल्प समाज को देते हैं उससे बेहतर विकल्प रैदास बेग़मपुरा का देते हैं।

संत रैदास के विषय में डॉ. एन. सिंह का कहना है—*"संत रैदास ने तत्कालीन रुढ़ियों के प्रति विद्रोह किया इसलिए उन्हें सामाजिक क्रांति का अग्रदूत कहने में कोई अत्युक्ति नहीं है।"* [26]

रैदास का जन्म अछूत जाति 'चमार' में होने के कारण, उनके पास जाति के तिक्त अनुभव थे। सामाजिक अपमान था, गरीबी थी, जो जाति व्यवस्था के ही बायोप्रडक्ट थे, लेकिन उसके बाद भी उनके मन में कटुता की जगह विनम्रता और मानवता है। ऐसे राज की कल्पना करना जिसमें कोई भूखा न रहे, सभी समान और बेग़म रहें, श्रेष्ठ मानवता का उदाहरण है। चारो वर्णों की उनकी व्याख्या और जाति भेद पर उनके विचार एक लोकतांत्रिक और मानवीय समाज के निर्माण की भूमिका का निर्माण करते हैं।

संदर्भ सूची:

1. पी. वी. काणे: धर्मशास्त्र का इतिहास, पृष्ठ–110, हिंदी समिति सूचना विभाग, लखनऊ, उत्तर प्रदेश द्वितीय संस्करण
2. डॉ. तेज सिंह: प्रारंभ (पत्रिका), दलित साहित्य विशेषांक पृष्ठ–60, मई 2004
3. डॉ. नर्मदेश्वर प्रसाद : जाति व्यवस्था, पृष्ठ –77 संस्करण–1965, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली–6
4. इरफान हबीब का कोट : हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ–13, एन. सी. आर.टी. संस्करण–1997, लेखक :- विश्वनाथ त्रिपाठी
5. कबीर:कबीर ग्रंथावली, संपा. माताप्रसाद गुप्त, साहित्य भवन, प्रा. लि, 93 – जीरो रोड, इलाहाबाद, दोहा सं. 10 पृ. 62
6. मीरा: मीरांबाई, पृष्ठ 36, लेखक : ब्रजेन्द्र कुमार सिंहल, साहित्य अकादेमी, दिल्ली संस्करण –2017
7. माधव हाडा : मीरां रचना – संचयन, पृष्ठ–13 साहित्य अकादेमी, दिल्ली,संस्करण–2017
8. डॉ. शुकदेव सिंह: रैदास बानी,पृष्ठ 251, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड, जी–17, जगतपुरी, दिल्ली–110051, संस्करण 2003
9. रैदास : रैदास ग्रंथावली, पृष्ठ 163, डॉ. जगदीश शरण, गौतम बुक सेंटर 1/4446, रामनगर एक्स्टेंशन, गली नं. 4, शाहदरा दिल्ली, संस्करण–2019
10. तुलसीदास:रामचरितमानस 3/34/2, गीताप्रेस, गोरखपुर
11. रैदास ग्रंथावली, पृष्ठ 329 डॉ.– जगदीशरण
12. रैदास – वही –, पृष्ठ – 115
13. वही, पृष्ठ – 116
14. वही, पृष्ठ – 118
15. वही, पृष्ठ–119
16. डॉ. सुभाष चन्द – दलित मुक्ति की विरासत संत रविदास पृष्ठ–49, संस्करण–2012, आधार प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड पंचकुला, हरियाणा
17. रैदास : रैदास ग्रंथावली, पृष्ठ–111,डॉ. जगदीश शरण
18. वही, पृष्ठ–108
19. वही, पृष्ठ–109
20.वही,पृष्ठ–110
21. वही,पृष्ठ–112
22. वही, पृष्ठ–109
23. वही, पृष्ठ–112
24. वही, पृष्ठ–146
25. वही पृष्ठ–146
26. डॉ. एन सिंह : अपेक्षा (पत्रिका) पृष्ठ–16, अप्रैल–जून–2003 अंक

पत्रिका में बहुजन साहित्य की तीनों धाराओं यानी दलित साहित्य, आदिवासी साहित्य और पिछड़ा वर्ग साहित्य के साथ स्त्री सशक्तिकरण से जुड़ी रचनाएं आमंत्रित है। हम अन्य उपेक्षित अस्मिताओं जैसे विकलांगता व थेड जेंडर को भी महत्व देंगे।

संपादक मंडल